07 सामाजिक विज्ञान अध्ययन – क्या सही है और क्या गलत?

विमला रामचन्द्रन



जब मुझसे सामाजिक विज्ञान शिक्षण की मौजूदा स्थिति पर अपने विचार देने को कहा गया और पूछा गया कि आखिर क्यों हमारे स्कूली तंत्र का पूरा ध्यान बच्चों को कोई एक तय सही उत्तर बता देने, एक तय सही पद्धति बता देने और दुनिया को देखने का एक तय सही ढंग सिखा देने पर है – तो मैंने मुड़कर खुद अपने स्कूली दिनों को याद किया। हाँ, आज अध्यापन का ढंग निश्चित ही एकआयामी हो गया है, बच्चों से बस यह अपेक्षा होती है कि वे तथ्यों को रटकर परीक्षा में उत्तर पुस्तिकाओं में वैसे का वैसा उँड़ेल दें। कई युवाओं को नागरिक शास्त्र व इतिहास भयानक रूप से उबाऊ लगते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि परीक्षा हॉल से निकलते ही वे याद की हुई सारी बातें भूल जाते हैं। ऐसा क्यों है? क्या स्थिति इससे कुछ भिन्न हो सकती है?

और फिर मैं इस सोच में पड़ गई कि कैसे और क्यों हममें से कुछ लोग प्रश्न पूछते हुए, तार्किक स्पष्टीकरणों की माँग करते हुए और अन्धविश्वासों तथा पूर्वाग्रहों को चुनौती देते हुए बड़े हुए। हालाँकि, परिवार और मित्र समूह की हमारे जीवनमूल्यों और आचरणों को निर्धारित करने में महती भूमिका होती है, पर यह तथ्य लम्बे समय से स्वीकृत है कि दुनिया के प्रति हमारा नजरिया विकसित करने में स्कूल महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। स्वतंत्रता–पूर्व काल में समाज सुधारकों द्वारा स्थापित किए गए स्कूलों से बड़ा फर्क आया। वैसे ही आज भी हमारे स्कूल का हमारे व्यक्तित्व के विकास में बहुत बड़ा हाथ होता है। यह एक ज्ञात तथ्य है कि हम क्या और कैसे पढ़ते हैं, किस तरह के शिक्षक हमें पढ़ाते हैं, पाठ्यक्रम किस तरह पढ़ाया जाता है, इन सबका न सिर्फ हम क्या सीखते हैं, बल्कि कैसे सीखते हैं और खुद को अपने पर्यावरण के साथ कैसे जोड़ते हैं, इन सभी बातों पर प्रभाव पड़ता है।

मैं त्रिवेन्द्रम, केरल स्थित पैटम केन्द्रीय विद्यालय में पढ़ रही थी। यह 1968 की बात है। हम शिमला से आए ही थे और केन्द्र सरकार के एक अधिकारी के बच्चे होने की वजह से हम किसी भी शहर में बमुश्किल दो साल ही रुक पाते थे। स्कूल के एक शिक्षक, जिनका नाम मुझे याद नहीं आ रहा, का अमेरिका में चल रहे नागरिक अधिकार आन्दोलन से बहुत भावनात्मक जुड़ाव था। वे मार्टिन लूथर किंग के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे और मार्च 1968 में उस महान नेता की हत्या हो जाने पर वे बहुत विचलित हो गए थे। उन्होंने ही हमें उनके उस ऐतिहासिक भाषण – मेरा एक सपना है – से परिचित कराया और हममें से कई बच्चों ने उस भाषण को सुनाना सीख लिया था। एक दिन उन्होंने हमें पूजनीय आध्यात्मिक गुरु और समाज सुधारक श्री नारायण गुरु (1855–1922) के बारे में बताया जिन्होंने जातिवाद के विरुद्ध विद्रोह करके स्वतंत्रता तथा सामाजिक समानता के नए मूल्यों का प्रचार किया था। शिक्षक ने हम बच्चों से पूछा कि क्या हम लोग इन दो महान सुधारकों का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहेंगे।

हममें से कुछ तैयार हो गए, हालाँकि हमें अमेरिका के नागरिक अधिकार आन्दोलन या केरल के समाज सुधार आन्दोलन के बारे में ज्यादा कुछ पता नहीं था।

हमने नागरिक अधिकार आन्दोलन, मार्टिन लूथर किंग की हत्या और अमेरिका में समानता व न्याय के लिए हुए संघर्ष के बारे में पढ़ना शुरू किया। वे सहपाठी जो मलयालम पढ़ सकते थे, उन्होंने केरल के समाज सुधार आन्दोलन व श्री नारायण गुरु के बारे में पढ़ा और फिर बाकी की कक्षा को भी बताया। हमने अखबारों की कतरनें बटोरी, ब्रिटिश काउंसिल की लाइब्रेरी गए, सार्वजनिक पुस्तकालय में गए और लोगों से बात की। फिर हम आश्रम गए, व्याख्यान सुने, इधर–उधर घूमे और लोगों से चर्चा की। हम सब – विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले अलग–अलग जातियों, धर्मों के बच्चे – साथ में रहते थे और साथ ही खाना खाते थे (केन्द्रीय विद्यालय बहुमेल संस्कृति का एक ऐसा अद्भुत स्थान था जहाँ सभी सामाजिक–धार्मिक बन्धन पिघल जाते थे, वहाँ देशभर के बच्चे पढ़ते थे)। इन दो महान व्यक्तित्वों के बारे में लिखने के लिए विद्यार्थियों ने छोटे–छोटे समूहों में काम किया। उसके बाद हमने अपनी कक्षा में एक किस्म की प्रदर्शनी लगाई। वे मेरे विद्यार्थी जीवन के सबसे बढ़िया दो हफ्ते थे।

एक पारम्परिक ब्राम्हण परिवार से ताल्लुक होने के कारण मुझे समाज में व्याप्त जाति–आधारित असमानता के बारे में पर्याप्त समझ व जानकारी नहीं थी। इसके बारे में मैंने तमिलनाडु में चल रहे हिन्दू विरोधी आन्दोलन के दौरान पहली बार सुना (जब मैं आईआईटी मद्रास स्थित केन्द्रीय विद्यालय में पाँचवी कक्षा में पढ़ रही थी) और मुझे याद है कि बड़े बुजुर्ग उस वक्त यह दलील दे रहे थे कि अब ब्राम्हणों का राज्य में कोई भविष्य नहीं है अतः हमें अँग्रेजी और हिन्दी अच्छे से सीखना चाहिए। कुछ दूसरे लोग इस बात से असहमत थे और वे ऐतिहासिक अन्याय की बात कर रहे थे। ये बहसें बहुत आवेगपूर्ण हुआ करती थीं और बच्चों से अक्सर इस हिदायत के साथ बाहर जाकर खेलने को कह दिया जाता था कि वे कान लगाकर बड़ों के बीच हो रही बातचीत को न सुनें।

> *मेरे मित्रों में और मुझमें जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया वह यह कि हमने सवाल खड़े करना तथा रोजमर्रा के अनुभवों पर विचार करना शुरू कर दिया। हमने 1968–1969 के खाद्य संकट पर तथा समाज में व्याप्त अशान्ति और घोर असमानता पर चर्चाएँ कीं।*

दो–हफ्ते के इस छोटे से प्रोजेक्ट ने जाति, नस्ल, सामाजिक भेदभाव तथा उसमें व्याप्त असमानता एवं अन्याय की काली छाया के बारे में मेरी आँखें खोल दीं। प्रोजेक्ट के पूरा होने पर मैंने पारम्परिक रिवाजों तथा भेदभाव के सूक्ष्म और खुले रूपों पर सवाल उठाने शुरू कर दिए। साथ ही खास ध्यान देते हुए अलग–अलग समुदायों व पृष्ठभूमियों के बच्चों के साथ मित्रता की। इसके अलावा मैं अपने दोस्तों के घर खाना खाने का भी खास ध्यान रखा करती थी। मेरे मित्रों में और मुझमें जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया वह यह कि हमने सवाल खड़े करना तथा रोजमर्रा के अनुभवों पर विचार करना शुरू कर दिया। हमने 1968–1969 के खाद्य संकट पर तथा समाज में व्याप्त अशान्ति और घोर असमानता पर चर्चाएँ कीं। कुछ ही हफ्तों की छोटी से अवधि में हमारी दुनिया पूरी तरह उलट गई थी। उस समय यह कोई बड़ा भारी अनुभव नहीं लगा था, पर फिर कई साल बाद वयस्क जीवन में पहुँचने के बाद मुझे अहसास हुआ कि जिस किस्म की शिक्षा मैंने पाई उसका मुझपर कितना गहरा असर हुआ। मैंने यह भी अहसास किया कि हमारे शिक्षक ने हमें कभी यह नहीं बताया कि क्या तलाशें और क्या न तलाशें, या किस पर यकीन करें। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने कभी हमको जाति या धर्म पर कोई व्याख्यान नहीं दिया। हमारे शिक्षक ने हमें यह मौका दिया कि हम खुद स्थितियों की जाँच–पड़ताल करें और फिर स्वयं अपने निष्कर्ष पर पहुँचें।

कई दशकों बाद मुझे भीम संघ नामक कामकाजी बच्चों के कर्नाटक के एक संगठन के कार्य पर दस्तावेज तैयार करने का सौभाग्य मिला। दक्षिण कन्नड़ा स्थित कुण्डापुर की मेरी यात्रा के दौरान, मुझे मक्काला पंचायत (बाल पंचायत) के बारे में पता चला। 18 वर्ष तक की आयु वाले बच्चे पंचायत स्तर पर खुद अपने प्रतिनिधि चुनते हैं और बाल पंचायत का गठन करते हैं। वयस्क लोगों की पंचायत औपचारिक प्रक्रियाओं का पालन करते हुए चुनावों का संचालन करती है, जैसे निर्वाचन अधिकारी के समक्ष नामांकन दाखिल करना, प्रचार और फिर चुनाव। यह कार्यक्रम लोकतांत्रिक मूल्यों तथा प्रथाओं के बारे में बच्चों को अनुभवजन्य शिक्षा देने के लिए तैयार किया गया था। बाल पंचायत के चुनावों के बाद, एक टास्क फोर्स (कार्य बल) का गठन किया जाता है। यह एक प्रतिनिधिक मंच होता है जिसमें सभी स्थानीय सरकारी अधिकारी, निर्वाचित प्रतिनिधि और मक्काला पंचायत के बच्चे शामिल होते हैं। यह मंच सरकार के साथ निरन्तर संवाद बनाए रखने और सहयोग करने के उद्देश्य से बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी शुरुआत के दौर से ही, इस मंच पर बच्चों की भिन्न–भिन्न तरह की ढेरों समस्याओं की चर्चा की गई और उन्हें हल किया गया : उदाहरण के लिए, स्कूल जाने के रास्ते में पड़ने वाले मौसमी नाले पर पैदल पुल बनाना, घरेलू कामों हेतु बच्चों को न रखने के लिए समुदाय को राजी करना, होटलों पर काम करने के लिए बच्चों के अपने गाँवों से बाहर जाने के चलन को खत्म करना और ऐसे स्थानों पर वैकल्पिक स्कूलों की स्थापना करना जहाँ पास में कोई स्कूल न हो, इत्यादि। स्थानीय सरकार के साथ जुड़ने से इस कार्यक्रम के लिए प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के साथ काम करने का मौका पैदा हुआ है ताकि शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर किया जा सके और साथ ही स्कूलों को बच्चों के लिए एक आनन्दायक स्थान के रूप में बदला जा सके। (विमला रामचन्द्रन, गैंटिंग चिल्ड्रन बैक टू स्कूल, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2003)

मैंने देश के दूसरे भागों में भी बाल पंचायतों के माध्यम से इसी तरह के कार्य होते देखे हैं। मक्काला पंचायत के बारे में बहुत महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह शिक्षा, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के बारे में सीखने, और समानता एवं निष्पक्ष व्यवहार जैसे मूल्यों को बच्चों के मन में बैठाने जैसी बातों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी। चुनावों का अनुभव लेना, संवाद के माध्यम से निर्णयों तक पहुँचना, एक दूसरे के सन्देह दूर करना, और समाज–देश को लेकर अलग–अलग दृष्टिकोण रखने वाले लोगों के साथ जीना व काम करना सीखना – ये सब पहलू बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्य विकसित करने तथा दूसरों के लिए सम्मान पैदा करने हेतु सशक्त माध्यम थे।

बीते वर्षों में मैंने महिला समाख्या द्वारा संचालित कुछ महिला शिक्षण केन्द्रों (एमएसके) को भी इसी तरह की कार्यविधियाँ अपनाते हुए देखा है जहाँ लिंग सम्बन्ध, सामाजिक अन्याय, सामूहिक मंचों के माध्यम से सशक्तीकरण इत्यादि मुद्दे गहन शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में गुंथे हुए होते हैं। निरन्तर (लैंगिक व शैक्षणिक मसलों के लिए बना नई दिल्ली स्थित एक केन्द्र) के विण्डो टू द वर्ल्ड (ग्रामीण महिलाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने के अनुभव के बारे में एक विश्लेषणात्मक दस्तावेज, नई दिल्ली, नया संस्करण) शीर्षक से प्रकाशित एक दस्तावेज चरण दर चरण

यह दर्शाता है कि बांदा, उत्तर प्रदेश में एमएसके पाठ्यक्रम किस तरह विकसित हुआ।

> *हमारे पाठ्यक्रम की समस्या है कि वह विषय–प्रसंगों पर तो बहुत ज्यादा बल देता है पर सीखने की प्रक्रिया पर बहुत कम ध्यान देता है। विषय–प्रसंग की परवाह किए बगैर यदि अध्ययन प्रक्रिया हमें प्रेरित करे कि हम अपनी दुनिया को जाँचें–परखें, एक दूसरे से एवं आसपास के लोगों से चर्चा करें, खुद अपने परिवेश में इतिहास को खोजें और सबसे जरूरी बात, समूहों में काम करते हुए बहस करें, तर्कों को चुनौती दें, सवाल उठाएँ – तो इस तरह के अनुभव से हम सब (शिक्षक व बच्चे) ज्यादा समृद्ध हो सकेंगे।*

लगभग चार दशक बाद मुझे दिल्ली एससीईआरटी द्वारा तैयार की गई नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तक को पढ़ने का मौका मिला। निरन्तर के मेरे मित्र व साथियों ने, जो उस पाठ्यपुस्तक की रचना में भागीदार थे, मुझे उसका प्रारूप दिखाया। वह पाठ्यपुस्तक परम्परागत पाठ्यपुस्तकों जैसी नहीं थी; उसमें शिक्षक को प्रोजेक्टों के माध्यम से बच्चों के साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। उनको प्रेरित किया गया था कि वे अपने आसपास देखें और अपने पड़ोस और अपने शहर के बारे में जानें। मुझे याद है कि मैंने भी अपना अनुभव उनमें से कुछ लोगों के साथ बाँटा था।

मेरा सौभाग्य था कि इसी दौरान मुझे वर्ष में दो बार ऋषि वैली स्कूल (मदनापल्ले, आँध्र प्रदेश) जाने का मौका मिलता था और मैंने देखा कि कैसे इतिहास, नागरिक शास्त्र और तकरीबन सभी विषयों के प्रोजेक्ट–आधारित अध्ययन से विद्यार्थियों को पढ़ने, चर्चा करने व सोचने का मौका मिलता था। इससे बच्चों के दिमाग बिलकुल खुल जाते थे और वे प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित होते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि, पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया में भय और सजा की कोई जगह नहीं थी – बच्चों को पढ़ाई में मजा आता था।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में सुझाव दिया गया है कि अनुभवजन्य अध्यापन व अध्ययन में स्थानीय इतिहास तथा संस्कृति से सामग्री ली जाए। इससे मुझे तुरन्त ही ऊपर उल्लिखित दो हफ्ते चले मेरे प्रोजेक्ट की याद आ गई, कि किस तरह खोजने, पढ़ने और दो महान लोगों के जीवन और उनके विचारों को जानने से समालोचनात्मक चिन्तन की प्रक्रिया मेरे भीतर शुरू हो गई, जो हमेशा मेरे साथ रही चाहे वह विद्यार्थी जीवन हो, या बाद में एक शिक्षक की भूमिका हो या कि अब एक शोधकर्ता व लेखिका का रूप हो।

हमारी पाठ्यचर्या की समस्या है कि वह विषय–प्रसंगों पर तो बहुत ज्यादा बल देता है पर सीखने की प्रक्रिया पर बहुत कम ध्यान देता है। विषय–प्रसंग की परवाह किए बगैर यदि अध्ययन प्रक्रिया हमें प्रेरित करे कि हम अपनी दुनिया को जाँचें–परखें, एक दूसरे से एवं आसपास के लोगों से चर्चा करें, खुद अपने परिवेश में इतिहास को खोजें और सबसे जरूरी बात, समूहों में काम करते हुए बहस करें, तर्कों को चुनौती दें, सवाल उठाएँ – तो इस तरह के अनुभव से हम सब (शिक्षक व बच्चे) ज्यादा समृद्ध हो सकेंगे।

अनुभवजन्य अध्ययन प्रक्रिया में दिल और दिमाग दोनों शामिल रहते हैं। जब दिल को किसी जानकारी के बारे में पक्का भरोसा हो जाए, तो तुरन्त ही वह जानकारी आत्मसात हो जाती है। दिल को विश्वास होने के लिए जरूरी है कि जानकारी न केवल शिक्षक की आँखों में प्रामाणिक होनी चाहिए बल्कि एक दर्पण की भाँति होनी चाहिए जो 'सत्य' को वैसा ही प्रतिबिम्बित करे जैसा कि बच्चों ने उसे समझा हो। बच्चों को ऐसी प्रक्रिया में शामिल करने के लिए शिक्षक को कहीं ज्यादा प्रयास व मेहनत करना पड़ती है। वह कोई समस्त ज्ञान का स्रोत, सर्वज्ञ व्यक्ति नहीं होता, बल्कि एक मार्गदर्शक होता है जिसका काम होता है अपने विद्यार्थियों को इस काबिल बनाना कि वे चीजों की पड़ताल कर सकें, सामग्री इकट्ठा करें और फिर तथ्यों का विश्लेषण कर सकें। एक बार जब हमें जानकारियों को तलाशने–हासिल करने, उनपर समालोचनात्मक ढंग से विचार करने, चर्चा करने और उनको लेकर अपनी एक राय बनाने की समझ आ जाती है तो फिर हम इसे किसी भी स्थिति में उपयोग कर सकते हैं।

ऐसी अध्ययन प्रक्रियाएँ व्यावहारिक बुद्धि के मूल्य को पुनःपुष्ट करती हैं और नागरिकों के रूप में हमारे रोज के अनुभवों को अवधारणाओं व इतिहास से जोड़ती है। यह पद्धति सामाजिक सम्बन्धों, हावी रहने वाले पूर्वाग्रहों, अन्याय, असमानता, लैंगिक सम्बन्धों तथा भ्रष्टाचार, हिंसा जैसे ढेर सारे अन्य सामाजिक मुद्दों के बारे में समालोचनात्मक ढंग से विचार करने में विद्यार्थियों की मदद कर सकती है। व्यावहारिक बुद्धि और ज्ञान की दुनिया (जैसा कि उसे पाठ्यपुस्तकों में आदरपूर्वक स्थापित कर दिया गया है) के बीच सेतु बनाने से शिक्षकों और विद्यार्थियों को बहुमूल्य अन्तर्दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

यह सब, करने की तुलना में कहना बहुत आसान है। क्या हमारे शिक्षक अध्ययन–अध्यापन प्रक्रियाओं में ऐसी सम्पूर्ण मरम्मत के

सामाजिक विज्ञान अध्ययन – क्या सही है और क्या गलत?

लिए तैयार हैं? नए विचारों को जानते रहने, अध्ययन–अध्यापन की प्रक्रिया के बारे में एक अलग दृष्टि रखने के साथ ही सीखे हुए जड़तापूर्ण ज्ञान को दिमाग से निकाल देने का सचेत प्रयास भी साथ ही साथ चलते रहना चाहिए। नागरिक शास्त्र और सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई अनुभवजन्य अध्ययन के मुताबिक ढल सकती है। इसे बहुत ही शुरुआती स्तर पर कक्षा एक से पर्यावरण विज्ञानों में सिखाना शुरू किया जा सकता है और फिर इस शुरुआत को धीरे–धीरे आगे ले जाते हुए माध्यमिक शिक्षा तक ले जाया जा सकता है। निश्चित ही इससे परिदृश्य बहुत व्यापक हो जाएगा, लेकिन एक बार शिक्षकों और बच्चों को इस पद्धति की कला आ जाए, तो फिर इसे आगे बढ़ाना सम्भव है।

हमारे सामने आज कई बड़ी चुनौतियों में से एक यह है कि राजनेता हमारे लिए यह निर्धारित करना चाहते हैं कि सही इतिहास क्या है और सही नागरिक शास्त्र क्या है। इतिहास और नागरिक शास्त्र, दुर्भाग्यवश, एक राजनैतिक अखाड़ा बन गए हैं। वह एकमात्र तरीका, जिसके द्वारा हम इसे रोक सकते है, अनुभवजन्य अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया को शुरू करना ही है, ताकि हम स्थानीय अनुभवों, स्थानीय संस्कृति, इतिहास के लिए, तथा सबसे जरूरी, ऐसी अर्थपूर्ण शिक्षा के लिए जगह बना सकें जो हमारे बच्चों को यह सिखाती हो कि कैसे सीखना है न कि यह कि क्या सीखना है।

विमला रामचन्द्रन *एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट की निदेशक हैं जो शिक्षा तथा सशक्तीकरण पर काम कर रहे शोधकर्ताओं व प्रयोगकर्ताओं का एक समूह है। वे मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत, महिलाओं की शिक्षा के लिए बने भारत सरकार के कार्यक्रम – महिला समाख्या (1988–1993) के शिल्पकारों में से एक तथा उसकी पहली राष्ट्रीय प्रोजेक्ट निदेशक थीं। वे महिलाओं के एक स्वास्थ्य नैटवर्क, हैल्थवॉच, की संस्थापक हैं व 1994 से 2004 तक वे उसकी प्रबन्धक न्यासी भी रहीं। प्राथमिक शिक्षा, लैंगिक मुद्दों और महिला सशक्तीकरण पर उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे इस* erudelhi@gmail.com *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*